[2013] 10 एस.सी.आर. 393

गिर्राज प्रसाद मीना

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 1547, 2013)

सितम्बर 30, 2013

[डॉ बी.एस. चौहान और एस.ए. बोबडे, जे.जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 252 और अध्याय XXI-ए - आईपीसी की धारा 365 के तहत एफआईआर - 7 लोगों के खिलाफ अपहरण का आरोप - पुलिस ने केवल दो आरोपियों के खिलाफ धारा 323 और 343 आर/डब्ल्यू धारा 34 आईपीसी के तहत आरोप पत्र दायर किया - दोनों आरोपियों ने खुद को दोषी मानते हुए आवेदन दायर किया आरोपित अपराधों के लिए - ट्रायल कोर्ट ने पीड़ित को नोटिस दिए बिना आरोपी को आईपीसी की उपधारा 323 और 343 आर/डब्ल्यू धारा 34 के तहत दोषी ठहराया और उसी दिन मुकदमा समाप्त कर दिया - अपीलकर्ता द्वारा धारा 482 के तहत आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया - माना गया: मुकदमे का आदेश अदालत को दोषपूर्ण माना जाता है क्योंकि उसने न केवल बहुत जल्दबाजी में कार्रवाई की बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जो ज्ञात नहीं थी - अदालत आरोपी व्यक्तियों को लाभ देने से पहले पीड़ित को नोटिस देने के लिए बाध्य थी।

धारा 216 - आरोपों की अंतिमता - आरोप-पत्र दाखिल करने और संज्ञान लेने का आरोपों की अंतिमता से कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि आरोपों को दोषसिद्धि के चरण तक किसी भी चरण में बदला, संशोधित, बदला और जोड़ा जा सकता है।

अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम 1958 - धारा 12 - धारा 323 और 343 की उपधारा के तहत अभियुक्तों को दोषी ठहराया जाना। आईपीसी की धारा 34, उनके दोषी मानने पर - इसके अलावा यह माना गया कि दोषसिद्धि से उनकी सरकारी सेवा प्रभावित नहीं होगी - माना गया: ट्रायल कोर्ट के पास नागरिक परिणामों वाली कोई भी टिप्पणी करने की कोई क्षमता नहीं थी।

सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत आदेश के अनुसार। जांच के लिए आईपीसी की धारा 365 के तहत एफआईआर दर्ज की गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता का 5 अन्य आरोपियों के साथ निजी प्रतिवादियों द्वारा अपहरण कर लिया गया था। पुलिस ने जांच पूरी करने के बाद केवल दो आरोपियों (निजी प्रतिवादियों) के खिलाफ उपधारा के तहत आरोप पत्र दायर किया। 323 और 343 आर/डब्ल्यू धारा 34 आईपीसी। दोनों आरोपी-प्रतिवादियों ने उपधारा के तहत अपराधों के लिए दोषी होने का अनुरोध करते हुए एक आवेदन दायर किया। 323 और 343 आईपीसी, गवाहों के बयान दर्ज होने से पहले। ट्रायल कोर्ट ने आवेदन पर विचार किया और आरोपी को एसएस के तहत दोषी ठहराते हुए तुरंत सुनवाई पूरी की। 323 और 343 आर/डब्ल्यू धारा 34 आईपीसी, अपीलकर्ता को नोटिस जारी किए बिना। आरोपियों को अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 12 के प्रावधानों का लाभ दिया गया, जिसमें कहा गया कि आपराधिक मामले में पारित आदेश का आरोपी व्यक्तियों की सरकारी सेवा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। अपीलकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन दायर करके ट्रायल कोर्ट के आदेश को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता ने संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती नहीं दी थी और न ही जब आरोपी को आरोप पढ़ाए गए थे तो कोई आपत्ति जताई गई थी। इसलिए वर्तमान अपील।

कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए

आयोजित: 1.1. अपीलकर्ता शुरू से ही शिकायत उठा रहा है कि पुलिस मामले की ठीक से जांच नहीं कर रही है और इस उद्देश्य से उसने रिट याचिका दायर करके उच्च न्यायालय का दरवाजा भी खटखटाया था, जिसमें डिवीजन बेंच द्वारा कई निर्देश जारी किए गए थे। हाईकोर्ट ने पुलिस महानिदेशक को निष्पक्ष जांच के लिए आदेश दिया। सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपीलकर्ता के बयान में, अपीलकर्ता ने पूरा विवरण दिया कि कैसे उसका अपहरण किया गया और अवैध रूप से हिरासत में लिया गया। अपीलकर्ता ने 7 लोगों को नामित किया और आपराधिक धमकी, धमकी, आतंकित करने और शारीरिक नुकसान पहुंचाने के गंभीर आरोप लगाए गए थे। पुलिस ने जांच पूरी करने के बाद केवल दो आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया और वह भी केवल आईपीसी की धारा 323 और 343 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए। [पैरा 7]

1.2. अगर ट्रायल कोर्ट ने जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और विशेष रूप से सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए बयान पर अपना दिमाग लगाया होता, तो

आईपीसी की धारा 365 के तहत भी आरोप तय किए जा सकते थे। उस मामले में, ग्राम न्यायालय के पास इस मामले से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा क्योंकि उस अपराध के लिए अधिकतम सजा जुर्माने के साथ 7 साल की कैद है, और उस स्थिति में मजिस्ट्रेट, मामले को सत्र अदालत में सौंपने के लिए बाध्य था। इसके अलावा, गवाहों के बयान दर्ज होने से पहले, निजी उत्तरदाताओं ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए एक आवेदन दायर किया। अगर गवाहों के बयान दर्ज हो गए होते तो शायद अदालत अन्य आरोपियों को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत समन जारी कर सकती थी. या धारा 216 सीआर.पी.सी. के तहत आरोपों को संशोधित/परिवर्तित/संशोधित किया जा सकता था। इससे भी अधिक, उस स्तर पर, अपीलकर्ता की बात नहीं सुनी गई क्योंकि उसे कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था। ट्रायल कोर्ट ने न केवल बहुत जल्दबाजी में कार्रवाई की, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जो कानून में ज्ञात नहीं है, और इसलिए ट्रायल कोर्ट का निर्णय और आदेश दूषित हो गया है। [पैरा 8 और 9]

1.3. हाईकोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन खारिज कर दिया। अपीलकर्ता द्वारा केवल इस आधार पर दायर किया गया कि अपीलकर्ता ने न तो संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती दी और न ही आरोपी पर आरोप पढ़ते समय कोई आपत्ति जताई। उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि अपीलकर्ता या किसी अन्य गवाह का बयान दर्ज होने से पहले, ट्रायल कोर्ट ने उस तारीख को मामले का निपटारा कर दिया जब आवेदन स्वयं अपराध स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया था। अन्यथा भी यदि ट्रायल कोर्ट 10/01/2019 से सम्मिलित अध्याय XXI-ए के तहत प्ली बार्गेनिंग के किसी मुद्दे पर विचार करना चाहता है। 5.7.2006, तब भी अदालत वर्तमान मामले में दिए गए ऐसे किसी भी लाभ को देने से पहले पीड़ित को नोटिस देने के लिए बाध्य थी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलकर्ता के पास उचित मंच के समक्ष कोई शिकायत उठाने का कोई अवसर नहीं था। [पैरा 13]

1.4 आरोप पत्र दाखिल करने और संज्ञान लेने का आरोपों की अंतिमता से कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि अदालत द्वारा संज्ञान लेने के बाद लगाए गए आरोपों में बदलाव/संशोधन/परिवर्तन किया जा सकता है और किसी भी स्तर पर कोई भी आरोप जोड़ा जा सकता है। सीआरपीसी की धारा 216 के प्रावधानों के मद्देनजर सजा के चरण तक। एकमात्र कानूनी आवश्यकता यह है कि, यदि ट्रायल कोर्ट धारा 228/251 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, तो आरोपी धारा 217 सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत आवश्यक कारण बताओ/सुनवाई के अवसर का हकदार है। पी.सी. [पैरा 6]

उमेश कुमार बनाम ए.पी. राज्य **जेटी 2013 (12) एससी 213: 2013 (10) एससीसी 591 - पर भरोसा किया गया।**

2. जहां तक निजी उत्तरदाताओं का संबंध है, ट्रायल कोर्ट के पास नागरिक परिणामों वाली कोई भी टिप्पणी करने की कोई क्षमता नहीं थी। अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 12 सेवा के प्रयोजन के लिए भी दोषसिद्धि के प्रभाव को नहीं हटाती है। [पैरा 11 और 13]

यूपी राज्य बनाम रणजीत सिंह **एआईआर 1999 एससी 1201: 1999 (1) एससीआर 786;** *शंकर दास बनाम भारत संघ और अन्य* **एआईआर 1985 एससी 772: 1985 (3) एससीआर 163;** *सुशील कुमार सिंघल बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक* **(2010) 8 एससीसी 573: 2010 (9) एससीआर 796;** *ऐथा चंदर राव बनाम स्टेट ऑफ ए.पी.* **1981 सपोर्ट एससीसी 17;** *हरिचंद बनाम स्कूल शिक्षा निदेशक* **एआईआर 1998 एससी 788: 1998 (1) एससीआर 143;** *मंडल कार्मिक अधिकारी, साउथेम रेलवे और अन्य बनाम टी.आर. चेल्लप्पन* **एआईआर 1975 एससी 2216: 1976 (1) एससीआर 783;** *त्रिखा राम बनाम वी.के. सेठ और अन्य* **एआईआर 1988 एससी 285: 1987 सप्ल एससीसी 39;** *करमीजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य* **(2009) 7 एससीसी 178 - पर निर्भर।**

केस कानून संदर्भ:

2013 (10) एससीसी 591	**पैरा**	**6 पर निर्भर था**
1999 (1) एससीआर 786	**पैरा**	**10 पर निर्भर था**
1985 (3) एससीआर 163	**पैरा**	**11 पर निर्भर था**
2010 (9) एससीआर 796	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**
1981 सप्लीमेंट एससीसी 17	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**
1998 (1) एससीआर 143	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**
1976 (1) एससीआर 783	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**
1987 सप्ल. एससीसी 39	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**
(2009) 7 एससीसी 178	**पैरा**	**12 पर निर्भर था**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2013 की आपराधिक अपील संख्या 1547

एस.बी. में जयपुर स्थित राजस्थान खंडपीठ के लिए उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 23/04/2012 से 2012 की आपराधिक विविध याचिका संख्या 1260

अपीलकर्ता के लिए एच.डी. थानवी, अभिषेक गुप्ता, प्रीति थानवी, शरद कुमार सिंघानिया।

प्रतिवादियों की ओर से नीलोफर कुरेशी, रहनुमा, विवेक सिंह, प्रगति नीखरा।

न्यायालय का निर्णय **डॉ. बी.एस.चौहान, जे.** द्वारा सुनाया गया।

1. यह अपील एस.बी. में राजस्थान उच्च न्यायालय (जयपुर पीठ) द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 23.4.2012 के विरुद्ध दायर की गई है। आपराधिक विविध. याचिका संख्या 1260/2012, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 (इसके बाद 'सी.आर.पी.सी.' के रूप में संदर्भित) के तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया - निर्णय और आदेश दिनांक 15.7 को रद्द करने के लिए 2011 न्यायाधीश, ग्राम न्यायालय, गंगापुर सिटी, जिला सवाई माधोपुर, राजस्थान द्वारा 2011 के केस संख्या 269 में पारित किया गया, जिसके तहत ट्रायल कोर्ट ने धारा 323 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी मानने के प्रतिवादी-अभियुक्तों के आवेदन को खारिज कर दिया है। और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 343 (इसके बाद इसे "आईपीसी' के रूप में संदर्भित किया गया है) और इसके अलावा उन्हें अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 12 का लाभ दिया गया है (इसके बाद इसे "अधिनियम 1958" के रूप में संदर्भित किया गया है) 2009 की धारा 365 आईपीसी के तहत पुलिस स्टेशन वज़ीरपुर में दर्ज एफआईआर संख्या 115 से उत्पन्न मामले में।

2. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं:

A. विद्वान मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एक आदेश पारित किया। जांच के लिए आईपीसी की धारा 365 के तहत 2009 की एफआईआर संख्या 115, कामीश मीना, जो अपीलकर्ता का बहनोई है, द्वारा दायर शिकायत पर दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता का अन्य आरोपियों के साथ निजी प्रतिवादियों द्वारा अपहरण कर लिया गया था। जब वह स्कूल में शिक्षक की ड्यूटी से लौट रहे थे।

बी. पुलिस ने मामले की जांच की, 4/7/2009 को ग्राम जीवी से अपीलकर्ता का पता लगाया और धारा 161 सीआरपीसी के तहत विभिन्न व्यक्तियों के बयान दर्ज किए, और अपीलकर्ता का बयान धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया। जांच पूरी करने के बाद, पुलिस ने आरोपियों

के खिलाफ दिनांक 4/8/2010 को आरोप पत्र दायर किया - अर्थात् केवल निजी उत्तरदाताओं के खिलाफ धारा 323, 343 के साथ पठित धारा 34 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए।

सी. आरोप पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमा शुरू हुआ। 3/1/2011 को अदालत ने गवाहों को 9/6/2011 को बयान दर्ज कराने के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया. हालाँकि, उक्त तिथि पर, अपीलकर्ता सहित तीन गवाहों को 7/7/2011 को अपने साक्ष्य दर्ज करने के लिए सम्मन जारी किए गए थे। लेकिन तय तिथि पर मुकदमा आगे नहीं बढ़ सका।

डी. 15.7.2011 को, दोनों आरोपी-प्रतिवादी विद्वान ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित हुए और धारा 323 और 343 आईपीसी के तहत अपराध के लिए दोषी मानते हुए एक आवेदन दायर किया। उक्त आवेदन पर तुरंत विचार किया गया और विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता को नोटिस जारी किए बिना, उसी दिन सुनवाई समाप्त कर दी, प्रतिवादियों को धारा 323 और 343 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और 500/- रुपये का जुर्माना लगाया, और आगे की मंजूरी दी: उन्हें अधिनियम 1958 की धारा 3 और 12 के प्रावधानों का लाभ मिलेगा। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आगे कहा कि आपराधिक मामले में पारित आदेश का आरोपी व्यक्तियों की सरकारी सेवा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ई. व्यथित, अपीलकर्ता ने उक्त निर्णय और दिनांक 15/7/2011 के आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष विभिन्न आधारों पर चुनौती दी, जिसमें यह भी शामिल है कि निचली अदालत ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अपीलकर्ता के बयान पर विचार न करने में त्रुटि की थी, जिसमें आरोपी व्यक्तियों और अन्य लोगों के खिलाफ गंभीर आरोप लगाए गए थे, विशेष रूप से अपीलकर्ता का अपहरण कर लिया गया था और 29/6/2009 से 4/7/2009 तक अवैध रूप से हिरासत में रखा गया था; उसे आतंकित करना और धमकी देना कि उसके हाथ और पैर काट दिये जायेंगे; शिकायतकर्ता को लगातार गाली देना। अपीलकर्ता को सूचना दिए बिना मामले को एक ही दिन में जल्दबाजी में निपटा दिया गया। इससे भी अधिक, निचली अदालत को यह टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं था कि दोषसिद्धि का आदेश प्रतिवादी-आरोपी की सेवाओं पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

एफ. उच्च न्यायालय ने दिनांक 23/4/2012 के आदेश के तहत उक्त आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता ने संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती नहीं दी है और न ही जब अभियुक्तों पर आरोप पढ़े गए थे और प्रतिवादी-अभियुक्तों को दोषी ठहराया गया था, तब कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। वे उपरोक्त अपराधों के संबंध में अपना दोष स्वीकार कर रहे

हैं। उच्च न्यायालय ने माना कि इस स्तर पर अपीलकर्ता या किसी अन्य गवाह को सुनने के लिए कानून में कोई दायित्व नहीं था और ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेश पारित करने में सही किया था।

इसलिए, यह अपील.

3. श्री एच.डी. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील थानवी ने बड़ी संख्या में मुद्दे उठाए हैं और जोर देकर कहा है कि ट्रायल कोर्ट को यह टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं है कि दोषसिद्धि का उत्तरदाताओं की सेवा पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता है। इससे भी अधिक, निचली अदालतों ने अधिनियम 1958 की धारा 12 के प्रावधानों के दायरे को पार करने में त्रुटि की थी। अपीलकर्ता को नोटिस जारी किए बिना, आरोप तय किए बिना मुकदमा समाप्त कर दिया गया।

4. दूसरी ओर, निजी उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील सुश्री निलोफर कुरेशी ने अपील का विरोध करते हुए कहा कि फैसला और आदेश कानून के अनुरूप पारित किया गया है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। दरअसल, अपीलकर्ता प्रतिवादी नंबर 2-अभियुक्त किरोड़ी लाल मीणा के दामाद का पिता है। प्रतिवादी की बेटी हेमलता के साथ अपीलकर्ता और उसके परिवार ने दुर्व्यवहार किया था। पार्टियों के बीच विभिन्न नागरिक और आपराधिक मामले थे और वर्तमान मामला ऐसी कार्यवाही का जवाबी हमला है।

राजस्थान राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी वकील श्री विवेक सिंह ने प्रतिवादी-अभियुक्तों के मामले का समर्थन करते हुए तर्क दिया है कि निचली अदालतों के आदेश वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप हैं और एक बार आरोप पत्र दायर हो जाने के बाद, आरोप अंतिम हो गए हैं, और चूँकि लगाए गए आरोप इतने गंभीर नहीं थे, अधिनियम 1958 का लाभ निजी उत्तरदाताओं को उचित रूप से दिया गया है। अत: अपील खारिज किये जाने योग्य है।

5. हमने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

6. आरोप पत्र दाखिल करने और संज्ञान लेने का आरोपों की अंतिमता से कोई लेना-देना नहीं है, क्योंकि अदालत द्वारा संज्ञान लेने के बाद लगाए गए आरोपों में बदलाव किया जा सकता है/। संशोधित/परिवर्तित और धारा 216 सीआरपीसी के प्रावधानों के मद्देनजर सजा के चरण तक किसी भी चरण में कोई भी आरोप जोड़ा जा सकता है। एकमात्र कानूनी आवश्यकता यह है कि,

यदि ट्रायल कोर्ट धारा 228/251 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, तो आरोपी धारा 217 सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत आवश्यक कारण बताओ/सुनवाई के अवसर का हकदार है। पी.सी. (वाइड*: उमेश कुमार बनाम स्टेट ऑफ ए.पी.* जेटी 2013 (12) एससी 213)।

7. वास्तव में, अपीलकर्ता शुरू से ही यह शिकायत उठाता रहा है कि पुलिस मामले की ठीक से जांच नहीं कर रही है और इस उद्देश्य के लिए, उसने 2009 की रिट याचिका संख्या 14272 दायर करके उच्च न्यायालय का दरवाजा भी खटखटाया था, जिसमें कई राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 10/2/2010 और 11/8/2010 के आदेशों के तहत निष्पक्ष जांच के लिए पुलिस महानिदेशक को निर्देश जारी किए गए थे। अपीलकर्ता के बयान में धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष, अपीलकर्ता ने पूरा विवरण दिया है कि कैसे स्कूल ड्यूटी से लौटते समय उसका अपहरण कर लिया गया था और निजी प्रतिवादियों और पांच अन्य लोगों द्वारा उसे इनोवा कार में जबरन उठा लिया गया था और 29/6/2009 से 4/7/2009 तक अवैध रूप से हिरासत में रखा गया था। वह पुलिस द्वारा स्थित था। अपीलकर्ता ने 7 लोगों को नामित किया और आपराधिक धमकी, धमकी, आतंकित करने और शारीरिक नुकसान पहुंचाने के गंभीर आरोप लगाए गए थे। पुलिस ने जांच पूरी करने के बाद केवल दो आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया और वह भी केवल आईपीसी की धारा 323 और 343 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए।

8. अगर ट्रायल कोर्ट ने जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और विशेष रूप से सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए बयान पर अपना दिमाग लगाया होता, तो आईपीसी की धारा 365 के तहत भी आरोप तय किए जा सकते थे। उस मामले में, ग्राम न्यायालय के पास इस मामले से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा क्योंकि उस अपराध के लिए अधिकतम सजा जुर्माने के साथ 7 साल की कैद है, और उस स्थिति में मजिस्ट्रेट, मामले को सत्र अदालत में सौंपने के लिए बाध्य था। इसके अलावा, गवाहों के बयान दर्ज होने से पहले, निजी उत्तरदाताओं ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए एक आवेदन दायर किया। अगर गवाहों के बयान दर्ज हो गए होते तो शायद अदालत अन्य आरोपियों को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत समन जारी कर सकती थी. या धारा 216 सीआर.पी.सी. के तहत आरोपों को संशोधित/परिवर्तित/संशोधित किया जा सकता था। इससे भी अधिक, उस स्तर पर, अपीलकर्ता को नहीं सुना गया क्योंकि उसे कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था, ट्रायल कोर्ट ने बहुत जल्दबाजी में कार्यवाही की और 15/7/2011 को उसी तारीख को मामले का निपटारा कर दिया जब निजी उत्तरदाताओं द्वारा आवेदन दायर किया गया था।

9. उक्त तथ्यों पर, हमारी सुविचारित राय है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने न केवल बहुत जल्दबाजी में कार्रवाई की, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जो कानून में ज्ञात नहीं है, और इसलिए ट्रायल कोर्ट का निर्णय और आदेश दूषित हो गया है।

10. यूपी राज्य में बनाम रणजीत सिंह, एआईआर 1999 एससी 1201, इस न्यायालय ने माना है कि उच्च न्यायालय ने एक आपराधिक मामले का फैसला करते समय और यू.पी. का लाभ दिया। फर्स्ट ऑफेंडर्स प्रोबेशन एक्ट, 1938, या इसी तरह के अधिनियम में यह निर्देश जारी करने की कोई क्षमता नहीं है कि आरोपी को कोई नागरिक परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा। न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"5. हम यह भी समझने में असफल हैं कि एक आपराधिक मामले का फैसला करते समय उच्च न्यायालय कैसे यह निर्देश दे सकता है कि आरोपी को बिना ब्रेक के निरंतर सेवा में माना जाना चाहिए और इसलिए, उसे उसका पूरा वेतन और [महंगाई भत्ता] दिया जाना चाहिए। उनके निलंबन की अवधि के दौरान। यह निर्देश और अवलोकन पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है..."(जोर जोड़ा गया)

11. शंकर दास बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1985 एससी 772 में, इस न्यायालय ने माना है कि आदेश दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप सेवा से बर्खास्तगी, अधिनियम 1958 की धारा 12 के अर्थ में अयोग्यता नहीं है: @@

"4 ... ऐसे क़ानून हैं जो प्रदान करते हैं कि जिन व्यक्तियों को कुछ अपराधों के लिए दोषी ठहराया जाता है। कुछ अयोग्यताएं होती हैं। उदाहरण के लिए, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अध्याय III, जिसका शीर्षक 'संसद और राज्य विधानमंडलों की सदस्यता के लिए अयोग्यताएं' है और अध्याय IV जिसका शीर्षक 'मतदान के लिए अयोग्यताएं' है, में ऐसे प्रावधान हैं जो कुछ आरोपों के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्तियों को अयोग्य घोषित करते हैं। विधानमंडलों के सदस्यों से या विधानमंडलों के चुनावों में मतदान करने से। अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 में 'अयोग्यता' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। [इसलिए, उच्च न्यायालय के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि 1958 अधिनियम की धारा 12 सेवा के उद्देश्य से भी दोषसिद्धि के प्रभाव को छीन लेती है।"

12. अधिनियम 1958 के प्रावधान को इस न्यायालय द्वारा सुशील कुमार सिंघल बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक, (2010) 8 एससीसी 573 में विस्तृत रूप से निपटाया गया

है, जिसमें ऐथा चंदर राव बनाम में इस न्यायालय के निर्णयों पर विचार करने के बाद। ए.पी. राज्य, 1981 समर्थन एससीसी 17; हरिचंद बनाम स्कूल शिक्षा निदेशक, एआईआर 1998 एससी 788; मंडल कार्मिक अधिकारी, दक्षिण रेलवे एवं अन्य। वी. टी.आर. चेल्लप्पन, एआईआर 1975 एससी 2216; और *त्रिखा राम बनाम वी.के. सेठ एवं अन्य*, एआईआर 1988 एससी 285, अदालत ने निम्नानुसार माना:

> "उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेपित किया जा सकता है कि किसी अपराध में किसी कर्मचारी की दोषसिद्धि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने या उसकी बर्खास्तगी/हटाने के लिए उचित कदम उठाने की अनुमति देती है। उसकी सजा का आधार। 1958 अधिनियम की धारा 12 में शामिल शब्द "अयोग्यता" अन्य कानूनों में प्रदान की गई अयोग्यता को संदर्भित करता है, जैसा कि उपरोक्त मामलों में इस न्यायालय द्वारा समझाया गया है, और कर्मचारी सेवा में बने रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। केवल इस आधार पर कि उन्हें 1958 अधिनियम के तहत परिवीक्षा का लाभ दिया गया था।"

(यह भी देखें: करमजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 7 एससीसी 178)।

13. इस प्रकार, हमारी यह भी सुविचारित राय है कि ट्रायल कोर्ट के पास अब तक नागरिक परिणामों वाली कोई भी टिप्पणी करने की कोई क्षमता नहीं थी। निजी उत्तरदाताओं का संबंध है।

उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता ने संज्ञान लेने के आदेश को न तो चुनौती दी और न ही पढ़ने के समय कोई आपत्ति जताई। अभियुक्तों पर आरोप। उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि अपीलकर्ता या किसी अन्य गवाह का बयान दर्ज होने से पहले, ट्रायल कोर्ट ने उस तारीख को मामले का निपटारा कर दिया जब आवेदन स्वयं अपराध स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किया गया था। अन्यथा भी यदि ट्रायल कोर्ट 5/7/2006 से डाले गए अध्याय XXI-ए के तहत प्ली बार्गेनिंग के किसी भी मुद्दे पर विचार करना चाहता था, तब भी अदालत वर्तमान मामले में दिए गए ऐसे किसी भी लाभ को देने से पहले पीड़ित को नोटिस देने के लिए बाध्य थी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है। इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलकर्ता के पास उचित मंच के समक्ष कोई शिकायत उठाने का कोई अवसर नहीं था।

14. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। ट्रायल कोर्ट के 15/7/2011 के फैसले और आदेश के साथ-साथ 23/4/2012 के उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द कर दिया गया है। मामले को कानून के अनुसार नए सिरे से तय करने के लिए ट्रायल कोर्ट में भेज दिया गया है। चूंकि मामला बहुत पुराना है, हम ट्रायल कोर्ट से अनुरोध करते हैं कि वह यहां ऊपर बताई गई प्रक्रिया को अपनाते हुए, अधिमानतः उसके समक्ष आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर, नए सिरे से सुनवाई समाप्त करे।

मामले से अलग होने से पहले, हम स्पष्ट करेंगे कि हमने आगामी मुकदमे की योग्यता पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

केकेटी: अपील की अनुमति है